# गांधी और ख़लीफत

डॉ. शंकर शरण



www.nayaindia.com

४ नवम्बर २०१९

# ऐतिहासिक भूल के सौ साल

भारत में महात्मा गांधी का पहला बड़ा राजनीतिक अभियान खिलाफत आंदोलन में भाग लेना था। यह मुहिम कुछ भारतीय मुसलमानों द्वारा शुरू की गई थी। उद्देश्य था तुर्की में इस्लाम के खलीफा सुल्तान की गद्दी और उसका साम्राज्य बचाना। मई 1919 से खिलाफत सभाओं में गांधी जी के भाषण शुरू हुए। खिलाफतवादियों ने 17 अक्टूबर 1919 को 'खिलाफत दिवस' मनाया। उसका गांधी जी ने खूब प्रचार किया था। दिल्ली में 23 नवंबर, 1919 को 'अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेंस' हुई जिसकी अध्यक्षता गांधी जी ने की थी। इन सम्मेलनों में आंदोलन विस्तार की योजना बनी जिसमें सरकार द्वारा दी गई उपाधियां लौटाने, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार करने और टैक्स न देने का आह्वान किया गया। ये आह्वान अपने यहां इतिहास के पाठों में पढ़े-पढ़ाए जाते हैं, मगर वह सब खिलाफत के लिए हुआ था।

डॉ. आंबेडकर ने अपनी पुस्तक *'थॉट्स ऑन पाकिस्तान'* (1940) में लिखा, *'सच्चाई यह है कि असहयोग आंदोलन का उद्गम खिलाफत आंदोलन से हुआ, न कि स्वराज्य के लिए कांग्रेसी आंदोलन से। खिलाफतवादियों ने तुर्की की सहायता के लिए इसे शुरू किया और कांग्रेस ने उसे खिलाफतवादियों की सहायता के लिए अपनाया। उसका मूल उद्देश्य स्वराज्य नहीं, बल्कि खिलाफत था और स्वराज्य का गौण उद्देश्य बनाकर उससे (बाद में) जोड़ दिया गया था, ताकि हिंदू भी उसमें भाग लें।'* इसी प्रकार एनी बेसेंट के शब्दों में, 'खिलाफत-गांधी एक्सप्रेस' का तूफान चला। यह आंधी ऐसी चली कि कांग्रेस की पिछली परंपरा झटके में उड़ गई।

गांधी जी ने खिलाफत को 'मुसलमानों की गाय' कहकर हिंदुओं को प्रेरित किया। यानी जैसे हिंदू गाय पूजते हैं, उसी तरह मुसलमान अपने खलीफा को, जबकि मुस्लिम

जगत में कहीं खिलाफत की परवाह न थी। उलटे अरब के मुसलमान तुर्की के खलीफा से मुक्ति चाहते थे। खुद तुर्क लोग 'खिलाफत' के भार से आजिज थे। यह स्वयं महान तुर्क नेता कमाल पाशा ने कहा था। उन्होंने ही पहले ऑटोमन-तुर्क सल्तनत और फिर खिलाफत को 1924 में खत्म कर दिया।

जब गांधी जी खिलाफत आंदोलन चला रहे थे, उसी समय तुर्क उसे खत्म कर रहे थे। सामान्य बुद्धि से भी खिलाफत के उद्देश्य समर्थन योग्य नहीं थे। तुर्की साम्राज्य बनाए रखने का मतलब था कई देशों को तुर्की का उपनिवेश बनाए रखना, पर गांधी जी ने यंग इंडिया (2 जून 1920) में लिखा, *'मेरे विचार से तुर्की का दावा न केवल नैतिक एवं न्यायपूर्ण है, बल्कि पूर्णत: न्यायोचित है, क्योंकि तुर्की वही चाहता है जो उसका अपना है। गैर-मुस्लिम और गैर-तुर्की जातियां अपने संरक्षण के लिए जो गारंटी आवश्यक समझें, ले सकती हैं, ताकि तुर्की के आधिपत्य के अंतर्गत ईसाई अपना और अरब अपना स्वायत्त शासन चला सकें।'* गांधी जी ने आगे लिखा, *'मैं यह विश्वास नहीं करता कि तुर्क निर्बल, अक्षम या क्रूर हैं।'* यह भी गलत था, क्योंकि तुर्कों ने आर्मेनियाई जनसंहार (1915) किया था। उसमें दस-पंद्रह लाख आर्मेनियाई लोगों का तुर्कों ने सफाया किया। उन्हीं को गांधी जी दयालु कह रहे थे।

जिन्ना ने भी कहा कि खिलाफत 'पुराने जमाने' की चीज है और उसका साम्राज्य अब नहीं रह सकता। वैसी साम्राज्यवादी सत्ता बचाने में कुछ कठमुल्लों के साथ जुड़ जाना बहुत बड़ी भूल थी। चौरी-चौरा कांड के बहाने गांधी जी ने जब आंदोलन वापस लिया तो इसीलिए कि उन्हें वास्तविकता समझ आ गई थी। बहरहाल इस्लाम के लिए मुसलमानों में आवेश पैदा कर, उसमें हिंदुओं को झोंककर, 'एक साल में स्वराज' लेने का प्रलोभन देकर गांधी जी ने जो आंधी पैदा की, उससे समाज में गहरी दरार पड़ी। 'इस्लाम खतरे में' के नारे से मुसलमानों में 'काफिरों' के विरुद्ध जिहादी जोश भरा।

फलत: मालाबार में अगस्त 1920 में हिंदुओं पर ऐसे हृदयविदारक अत्याचार किए गए कि डॉ. आंबेडकर के शब्दों में, *'समग्र दक्षिण भारत के हिंदुओं में भय की एक भयानक लहर दौड़ गई।' किंतु गांधी जी ने उन अत्याचारों की निंदा तो दूर, बल्कि प्रच्छन्न प्रशंसा की। उन्होंने कांग्रेस को भी मोपला अत्याचारों पर कोई ऐसा प्रस्ताव लेने से रोका, ताकि 'मुसलमानों की भावनाओं को आघात न पहुंचे।'*

कांग्रेस नेता और विद्वान केएम मुंशी के अनुसार अधिकांश नेता मानते थे कि गांधी जी एक गलत उद्देश्य के लिए अनैतिक काम कर रहे हैं जिससे बड़े पैमाने पर हिंसा होगी और सुशिक्षित हिंदू-मुस्लिमों की राजनीतिक भागीदारी घटेगी। जिन्ना ने भी गांधी जी को चेतावनी दी थी कि मुल्ले-मौलवियों को राजनीतिक मंच देकर वह बड़ी भूल कर रहे हैं। इस मसले पर लाला लाजपत राय, एनी बेसेंट, रवींद्रनाथ टैगोर, श्रीअरविंद आदि मनीषियों ने भी सार्वजनिक चिंता प्रकट की थी। मौलाना आजाद सुभानी जैसे मुस्लिम नेता अंग्रेजों से भी बड़ा दुश्मन '22 करोड़ हिंदुओं' को मानते थे।

स्वामी श्रद्धानंद ने एक खिलाफत सभा का विवरण दिया है जिसमें वह गांधी जी के साथ सम्मिलित हुए थे। उसमें मौलाना लोग बार-बार हिंसा का आह्वान कर रहे थे। स्वामी श्रद्धानंद के शब्दों में, *'जब मैंने खिलाफत आंदोलन के इस पहलू की ओर ध्यान दिलाया तो महात्मा जी मुस्कुराए और कहने लगे कि वह ब्रिटिश नौकरशाही की ओर इंगित कर रहे हैं। उत्तर में मैंने कहा कि यह सब तो अहिंसा के विचार का विनाश करने जैसा है और जब मुस्लिम मौलानाओं के मन में उलटी भावनाएं आ गई हैं तो उन्हें इस हिंसा का इस्तेमाल हिंदुओं के विरुद्ध करने से कोई रोक नहीं सकेगा।'* आखिर वही हुआ। खिलाफत आंदोलन के दौरान और खिलाफत के खात्मे के बाद हिंदुओं को इस्लामी रोष का शिकार बनाया गया।

स्टैनले वोलपार्ट ने अपनी पुस्तक 'जिन्ना ऑफ पाकिस्तान' (1984) में लिखा है कि खिलाफत के खात्मे पर पूरे भारत में जहां-तहां मुसलमानों ने हिंदुओं पर गुस्सा उतारा। हत्या, दुष्कर्म, जबरन धर्मांतरण, अंग-भंग और क्रूर अत्याचार किए। पूरे खिलाफत आंदोलन के दौर की परख करने पर आश्चर्य होता है कि गांधी जी के अहिंसा संबंधी दोहरेपन तथा खिलाफत आंदोलन की किस बड़े पैमाने पर लीपा-पोती हुई है। उस आंदोलन के दुष्परिणामों से देश आज तक पूरी तरह नहीं उबर सका है। इसीलिए अपने-अपने कारणों से यहां सभी राजनीतिक धाराएं उसकी चर्चा से बचती हैं। जबकि यह उस ऐतिहासिक आंदोलन का शताब्दी वर्ष है।

## भाग 1

## "खलीफत-गांधी एक्सप्रेस" की शताब्दी पर मौन क्यों?

दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद भारत में गाँधी जी ने पहला राजनीतिक अभियान 1919 ई. में शुरू किया था। आज उसकी शताब्दी मनाना तो दूर, उस का नाम तक कोई नहीं ले रहा! जी हाँ, 'खलीफत आंदोलन' याद करें, जो वस्तुतः 'खलीफत-जिहाद' था, जिसे कांग्रेस अध्यक्ष रहीं विदुषी एनी बेसेंट ने *'गाँधी-खलीफत एक्सप्रेस'* कहा था। वह गाँधी जी का पहला राजनीतिक अभियान ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक भी रहा। खलीफत में शामिल होने से ही ऐसी गाँधी आँधी बनी कि कांग्रेस की पिछले चौंतीस वर्ष की राजनीतिक परंपरा झटके में उड़ गई। उसका तात्कालिक नेतृत्व बेरंग होकर पीछे हट गया।

जिस कारण एनी बेसेंट, मुहम्मद अली जिन्ना, डॉ. हेगडेवार जैसे अनेक नेताओं ने कांग्रेस छोड़ दी, जिसके बाद कांग्रेस की वैचारिकता 'वन्दे मातरम्' वाले स्वदेशी भाव

से दूर होती चली गई, जिस आंदोलन के कुछ भारतीय मुस्लिमों के हस्तक्षेप को बहाना बनाकर तुर्की में कमाल पाशा ने इस्लाम के खलीफा सुलतान को देश-निकाला दे दिया, जिस आंदोलन में गाँधी के जुडने से भारतीय इतिहास में पहली बार मुल्ले-मौलवियों को राजनीतिक महत्व मिला जो उन्हें मुगलकाल में भी हासिल नहीं हुआ था तथा जिस आंदोलन के प्रभाव से पूरी बीसवीं सदी का भारतीय इतिहास ग्रस्त रहा और आज भी मुक्त नहीं हुआ है – उस विशिष्ट 'गाँधी-खलीफत आंदोलन' की शताब्दी मनाने कोई आगे नहीं आ रहा है! न कांग्रेस, न मुसलमान, न कम्युनिस्ट, न गाँधीवादी संस्थाएं, और भाजपा भी नहीं, जिसने गाँधी-जयंती बढ़-चढ़कर मानने में अपनी मान्यताएं ही नहीं, सारा अनुपात-बोध छोड़ दिया है। सब ने 'खलीफत आंदोलन' को तहखाने में डालने की कोई गोपन दुरभिसंधि कर ली है। एक यही तथ्य चुगली कर देता है कि यह आंदोलन कितनी बड़ी और भयावह घटना थी, जिसका सत्य छिपाकर ही 'सत्य के पुजारी' की अतिरंजित महानता बचाई जा सकती है। क्योंकि उसी आंदोलन से गाँधी पहली बार भारत के सर्वप्रधान नेता बने, और क्या विडंबना! कि उसी आंदोलन ने यहाँ हिन्दुओं पर वह विभीषिका लादी जिसके मनोवैज्ञानिक दुष्परिणामों से वे आज तक पूरी तरह नहीं उबर सके हैं। इसीलिए, अपने-अपने कारणों से यहाँ सभी राजनीतिक धाराएं उसे छिपाना चाहती हैं।

वामपंथी इतिहासकारों के अनुसार खलीफत आंदोलन में गाँधीजी ने शामिल होकर, मगर उसे मनमाने बीच में वापस लेकर अवसरवादिता दिखाई, उस से मुसलमानों में संदेह भर गया। तब गाँधीजी महज 46 वर्ष के थे और उस से पहले भी कोई पचीस साल दक्षिण अफ्रीका में रहे। वहाँ भी वे नागरिक अधिकारों की सीमित, कानूनी लड़ाइयाँ लड़ते रहे थे। यानी, गाँधी को राष्ट्रवादी लड़ाई का न अनुभव था, न ज्ञान। ऐसी स्थिति में भारत आते ही राजनीति में कूदना और फौरन सर्वोच्च स्थान ले लेना एक बड़ी भूल थी। इस प्रकार, गाँधीजी के संपूर्ण राजनीतिक कैरियर में

खलीफत-असहयोग एक 'अपवाद' भूल रही, क्योंकि यह एक खालिस मजहबी-साम्राज्यवादी आंदोलन था। जिसका उद्देश्य थाः तुर्की में विश्व-इस्लाम के खलीफा सुलतान की गद्दी और उस का साम्राज्य बचाना।

सच्चे इतिहासकारों के अनुसार 'खलीफत जिहाद' में शामिल होकर उसके लिए तरह-तरह की मनगढ़ंत दलीलें, भाषण, आदि देकर गाँधीजी ने विचित्र सैद्धांतीकरण किये। उसके जो दुष्परिणाम हुए, उनका हिसाब करना कठिन है। वस्तुतः उस एक ही प्रसंग में गाँधीजी के सत्य और अहिंसा की भी सारी कलई खुल जाती है। न तो गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा के सिद्धांतों को समझा था, न उनके पास कोई 'अपना' सिद्धांत था, न ही वे इस्लामी या तुर्की इतिहास जानते थे। 1919 से 1922 ई. के बीच उनकी कही, लिखी तमाम बातें ही इस का सर्वोत्तम प्रमाण हैं।

उदाहरण के लिए, गाँधीजी ने खलीफत को '*मुसलमानों की गाय*' की संज्ञा दी थी। यानी, जैसे हिन्दू लोग गाय को पूज्य मानते हैं, उसी तरह मुसलमान अपने खलीफा की सत्ता को! यह कितनी अनर्गल बात थी, यह इसी से साफ है कि पूरे मुस्लिम विश्व में कहीं खलीफत की परवाह न थी। उलटे, ठीक अरब, मक्का-मदीना के मुसलमान तुर्की खलीफा से छुटकारा चाहते थे। खुद तुर्क जनता भी 'खलीफत' का भार उठाने से मुक्ति चाहती थी। यह स्वयं अतातुर्क कमाल पाशा ने कहा! जो तब चमत्कारी तुर्क नेता थे। उन्होंने ही, यानी स्वयं तुर्कों ने, पहले ऑटोमन-तुर्क सल्तनत और फिर खलीफत को 1924 ई. में खत्म कर डाला। ऐसे बड़े काम एक दिन में नहीं होते, उसकी तैयारी और मनोभाव पहले से बने होते हैं। यानी, जब भारत के कुछ कठमुल्ले मुस्लिम तुर्की सल्तनत व खलीफत बचाने का जोश भर रहे थे और गाँधी जी उसके पक्ष में चित्र-विचित्र भाषण दिए जा रहे थे, उसी समय अरब और तुर्की में उसे खत्म करने की भावना थी।

वैसे भी, खलीफत जिहाद के दोनों उद्देश्य – तुर्की में खलीफत तथा तुर्क साम्राज्य को बनाए रखना – सामान्य बुद्धि से भी समर्थन योग्य नहीं थे। तुर्क साम्राज्य बनाए रखने का मतलब था कई देशों को तुर्की का उपवनिवेश बनाए रखना। पर गाँधीजी को न वास्तविकता की परवाह थी, न सत्य की। वे बचपन से ही दिन-दिन अपने मन मे आती बातों और तरंगों को ही सिद्धांत, दर्शन, इतिहास, आदि मानने के आदी थे। उसी झक में उन्होंने तुर्की ऑटोमन साम्राज्य की 1914 ई. वाली सीमाएं पुनर्स्थापित करने की शेखचिल्ली माँग को 'मुसलमानों की गाय' जैसी भावुक संज्ञा दे डाली। इस से अधिक मूढ संज्ञा की कल्पना करना कठिन है। चाहे गाँधी में ऐसी अतिरंजना, कपोल-कल्पना, निराधार भावुकता, नियमित मिलती है। उनके वाङमय को कहीं से भी कुछ दूर तक विस्तार से पढ़कर इसे साफ देखा जा सकता है। किन्तु यदि कारण अज्ञान न था, तो गाँधीजी निश्चित-रूपेण असत्य का सहारा ले रहे थे जब उन्होंने खलीफत समर्थन के लिए अपने अखबार 'यंग इंडिया' (2 जून 1920) में तर्क दिया, *"मेरे विचार से तुर्की का दावा न केवल नैतिक और न्यायपूर्ण है, बल्कि पूरी तरह न्यायोचित है, क्योंकि तुर्की केवल वही चाहता है जो उस का अपना है। और मुस्लिम घोषणापत्र में निश्चित घोषणा की गई है कि गैर-मुस्लिम और गैर-तुर्की जातियाँ अपने संरक्षण के लिए जो गारंटी आवश्यक समझें, ले सकती हैं, ताकि तुर्की के आधिपत्य के अंतर्गत ईसाई अपना और अरब अपना स्वायत्तशासन चला सकें।"*

इस प्रकार, गाँधी तुर्की-इस्लामी साम्राज्यवाद का खुला समर्थन करते हुए उसे 'न्यायपूर्ण' ठहरा रहे थे! उस तर्क से भारत भी अंगेजों का 'अपना' था और हमें स्वतंत्रता की कोई जरूरत न थी! वहीं आगे गाँधी यह भी लिखते हैं कि "मैं यह विश्वास नहीं करता कि तुर्क निर्बल या अक्षम या क्रूर हैं।" यह भी घोर अज्ञान या साफ झूठ है, क्योंकि कुछ ही पहले (1915 ई.) ही तुर्कों ने भयावह आर्मीनियाई नरसंहार किया था, जिसमें आर्मीनिया की पूरी आबादी को खत्म या मार भगाने का

लक्ष्य था। उसमें दस से पंद्रह लाख आर्मीनियाई लोगों का तुर्कों ने निर्मम सफाया किया था। गाँधी उन्हीं तुर्कों के दयालु होने का सर्टिफिकेट दे रहे थे!

# भाग 2

# ‘पुराने जमाने’ की खलीफत को गांधी का समर्थन

वस्तुतः जिस तरह 1919 से 1924 ई. के बीच गाँधीजी ने खलीफत, इस्लाम, तुर्क-ऑटोमन साम्राज्य, तुर्की सुलतान की ‘जरूरतें’, हिन्दू-मुस्लिम इतिहास या संबंध, हिंसा और अहिंसा की व्याख्या आदि की – उन सब को एकत्र करके पढ़ते ही साफ हो जाता है कि गाँधीजी में और जो रहा हो, कोई सुसंगत दर्शन या जरूरी मामूली जानकारियाँ तक नहीं थी। न उन में राजनीतिक नेतृत्व करने की कोई योग्यता थी। इसलिए भी, खलीफत आंदोलन में गाँधी और कांग्रेस के जुड़ने के बाद भारत को, विशेषकर हिन्दुओं को यदि कुछ मिला, तो केवल विध्वंस, वीभत्स अत्याचार, ग्लानि व अपमान। वह भी उन लोगों के हाथों जिन के लिए बेचारे हिन्दू उस में गाँधी के आग्रह से शामिल हुए थे! क्या इस का हिसाब नहीं होना चाहिए था? क्या इसी से बचने के लिए खलीफत आंदोलन की शताब्दी से नजरें चुराई जा रही हैं?

भारत में गाँधीजी के संपूर्ण राजनीतिक कैरियर में उन्होंने तीन सब से बड़े आंदोलन छेड़े – पहला, खलीफत-असहयोग आंदोलन (1919); दूसरा, नागरिक अवज्ञा आंदोलन (1930); और तीसरा, भारत छोड़ो आंदोलन (1942)। इस में केवल ‘खलीफत-असहयोग आंदोलन’ में कुछ समय के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता देखी गई। प्रो. आई. एच. कुरैशी जैसे बड़े मुस्लिम इतिहासकार ने भी इसी आंदोलन में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच ‘संक्षिप्त हनीमून’ का उल्लेख किया है। वरना कुरैशी

के अनुसार, भारतीय मुसलमानों ने इस अवधि को छोड़कर कांग्रेस के किसी राष्ट्रीय आंदोलन में कभी भाग नहीं लिया।

खलीफत-असहयोग कुछ भारतीय मुसलमानों ने शुरू किया था। न तो कांग्रेस, न ही गाँधी ने उसे आरंभ किया था। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी मुख्यतः भारत के अप्रवासी मुसलमानों के बीच ही काम करते रहे थे। शायद इसी से उन्हें लगा हो कि वे भारत में भी उसी तरह मुसलमानों की सेवा कर अपने साथ कर सकेंगे। या फिर गाँधी केवल सस्ते में मुसलमानों का समर्थन पाने के लोभ से उस में जुड़े। कारण जो रहा हो, मुसलमानों की पहले से चल रही खलीफत-असहयोग गतिविधियों में गाँधी उत्साह से जुड़ गए। फिर दबाव देकर कांग्रेस को भी जोड़ा। यह कह कर कि इस से जो हिन्दू-मुस्लिम एकता बनेगी, उस से 'एक साल में' ही स्वराज मिल जाएगा!

निस्संदेह, यह एक जबर्दस्त प्रलोभन था। इसीलिए जल्द ही (सितंबर 1920) गाँधी अखिल भारतीय होम रूल लीग के अध्यक्ष बन गए। तत्कालीन कई कांग्रेस नेताओं की वरिष्ठता, अनुभव, ज्ञान, आदि को देखते हुए इसे गाँधी द्वारा किया गया 'राजनीतिक तख्तापलट' भी कहा गया है। अगले ही वर्ष दिसंबर 1921 के अहमदाबाद अधिवेशन में कांग्रेस ने गाँधीजी को 'डिक्टेटर' नियुक्त किया जिन के हाथ में 'आल इंडिया कांग्रेस कमिटी के संपूर्ण कार्यकारी अधिकार' दे दिए गए। इसे तख्तापलट कहना बहुत गलत नहीं लगता। जिस का कोई प्रावधान कांग्रेस में न था, वह पद गाँधी को दे दिया गया, जिन्होंने अभी अपना पहला आंदोलन शुरू ही किया था और जो अधर ही में था। इस प्रकार, खलीफत में कांग्रेस को जोड़ना न केवल गाँधी का अखिल भारतीय स्तर पर सब से पहला राजनीतिक कदम था, बल्कि वह ऐसा मास्टर-स्ट्रोक मान लिया गया कि जल्द ही उन्हें कांग्रेस में तानाशाही अधिकार मिल गए।

लेकिन, दुर्भाग्यवश, गाँधी इस्लामी इतिहास और राजनीति के क.ख.ग. से भी अनजान थे। इसीलिए उन्होंने खलीफत नेताओं की वैचारिकता जानने-समझने की कोई फिक्र नहीं की। खलीफत नेता मौलाना अब्दुल बारी, मुहम्मद अली, शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना महमूद-उल-हसन, आदि सभी घोर मध्ययुगीन कट्टरपंथी थे। मौलाना अली और मौलाना आजाद ने तो 1920 ई. में भारत को 'दारूल-हर्ब' बताकर मुसलमानों के लिए 'हिजरत' करने, यानी मुस्लिम शासन वाले देश में चले जाने का फतवा भी जारी किया था। उस में 5 लाख से अधिक भारतीय मुसलमानों ने अफगानिस्तान का रास्ता पकड़ा था। बाद में अधिकांश वापस लौटे, मगर इस आवा-गमन में काफी मुसलमान मरे भी। ऐसे मुस्लिम नेताओं की सेवा में गाँधी लगे हुए थे! उन्होंने मुहम्मद अली से पहली ही भेंट में 'लव एट फर्स्ट साइट' जैसी मुहब्बत हो जाने की बात कही थी। जिस मुहम्मद अली ने जल्द ही घोषित किया कि *"मैं गिरे से गिरे और बदकार मुसलमान को भी गाँधी से बेहतर मानता हूँ"*, ऐसे कट्टरपंथी इस्लामी नेताओं के प्रति गाँधी में किसलिए प्रेम उमड़ा था! फिर, उन्हें खलीफा, इस्लामी या तुर्की सल्तनत से क्या लेना-देना था?

इतिहासकार मुकुल केशवन के अनुसार, खलीफत में गाँधी के जुड़ने का महत्वपूर्ण कारण यह था कि इस के सहारे वे कांग्रेस नेतृत्व पर कब्जा जमाना चाहते थे। केशवन के शब्दों में, *"कांग्रेस का समर्थन लाने का वादा करके उन्होंने खलीफतवादियों का समर्थन लिया, और मुसलमानों का समर्थन मिलने का वादा करके उन्होंने कांग्रेस को अपनी मुट्ठी में किया, जबकि वे कांग्रेस के सदस्य तक नहीं थे, न कांग्रेस के किसी चुनाव में उम्मीदवार भी बने थे। कुछ समय के लिए तो गाँधी को जबर्दस्त सफलता मिली, किन्तु दूरगामी रूप से इस दुस्साहसी तख्तापलट ने उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन को अतुलनीय हानि पहुँचाई।"* (द टेलीग्राफ, 26 जून 2005) गाँधी में सामान्य इतिहास की भी जानकारी का अभाव तो उनकी आत्मकथा में स्वयं स्वीकार

किया गया है। पर खलीफत जिहाद में उत्साहपूर्वक भाग लेना गाँधी के अज्ञान का खतरनाक स्तर दर्शाता है। उस समय यह सामान्य जानकारी थी कि मुसलमानों के खलीफा के रूप में तुर्की सुलतान के दिन लद चुके। तुर्क-ऑटोमन साम्राज्य मृतप्राय हो चुका था। जिन्ना ने भी साफ कहा था कि खलीफत 'पुराने जमाने' की चीज है और उस का साम्राज्य अब बना नहीं रह सकता।

वैसी गुजरे जमाने की साम्राज्यवादी सत्ता बचाने में केवल भारत के कुछ कठमुल्ले लगे थे (किसी अन्य मुस्लिम देश में भी 'खलीफत आंदोलन' नहीं हुआ था)। उस में शामिल हो जाने की बड़ी भारी कीमत भारत को चुकानी पड़ी। वस्तुतः चौरी-चौरा कांड (5 फरवरी 1922) के बहाने गाँधी ने जब आंदोलन वापिस लिया तो कारण यही था कि उन्हें व्यर्थ लड़ाई की वास्तविकता समझ आ गई थी। वरना, जो आंदोलन पहले ही से उग्र हिंसक चल रहा था, जिस में गाँधी मुसलमानों के लिए ही शामिल हुए थे, तब उनसे बिना विचार किए उसे वापस लेने की कोई तुक नहीं थी। फिर, यदि खलीफत 'मुसलमानों की गाय' थी, तो उसे बचाए बिना गाँधी का आंदोलन वापस लेना उस गाय को मरने छोड़ देना ही हुआ! लेकिन गाँधी के सामने तथ्यों या विवेकपूर्ण सवालों का कभी महत्व नहीं रहा। ऐतिहासिक रूप से खलीफत आंदोलन इतनी हालिया चीज है जिस के दस्तावेज, घटनाक्रम कोई स्वयं परख सकता है। निस्संदेह, खलीफत जैसी मृतप्राय, विदेशी, साम्राज्यवादी इस्लामी सत्ता के लिए यहाँ मुसलमानों में आवेश पैदा कर, उस में हिन्दुओं को भी झोंक कर, तथा उस के सहारे 'फौरन स्वराज' ले लेने का प्रलोभन देकर गाँधी ने जो आँधी पैदा की, उस से समाज में गहरी दरार पड़ी। जिन्ना ने गाँधी को सही चेतावनी दी थी कि मुल्ले-मौलवियों को राजनीतिक मंच पर लाकर वे बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं।

# भाग 3

## 'असहयोग आंदोलन' था खलीफत के लिए!

गाँधी-वाङमय को उलटें तो एक से एक आश्चर्यजनक तथ्य उभरते हैं। 'संपूर्ण गाँधी वाङमय' के खण्ड 18 से 1919 ई. की गतिविधियों, वक्तव्यों का सिलसिलेवार विवरण मिलता है। 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर में जलियाँवाला कांड हुआ था। परन्तु आश्चर्य कि इस पर गाँधी को कोई विशेष दुःख, चिन्ता या आक्रोश हुआ नहीं मिलता। बल्कि वे एक स्थल पर यह कहते हुए मिल जाते हैं कि यदि जलियाँवाला बाग में उपस्थित सभी लोग भी मार डाले जाते, तब भी बाकी भारतवासियों को समान्य, शान्त बने रहना चाहिए! लेकिन 1919 से अगले तीन वर्ष तक गाँधीजी के 'खलीफत आंदोलन' संबंधी अनेक वक्तव्य, पत्र, सर्कुलर, संपादक के नाम पत्र, अपील, प्रार्थना और खलीफत नेताओं की व्यक्तिगत चिन्ता संबंधी अनगिनत सामग्रियाँ पढ़ने को मिलती हैं। इसका शतांश भी जलियाँवाला बाग के बलिदान हुए लोगों के लिए नहीं मिलता! गाँधी के लिए जलियाँवाला कांड कोई मुद्दा न था। तुलना में खलीफत आंदोलन और उनके नेताओं की फिक्र उन्हें बहुत अधिक थी। (गाँधी वाङमय के खंड 18 से 27 तक, यानी मई 1919 से मार्च 1924 तक की उनकी गतिविधियों, लेखन, भाषण, आदि में सब से अधिक बार-बार आने वाली चिंता और विषय 'खलीफत' थी।)

बहरहाल, खलीफतवादियों ने 17 अक्तूबर 1919 को 'खलीफत दिवस' मनाने का निश्चय किया था। गाँधीजी ने उसका अपनी ओर से काफी प्रचार किया और समर्थन जुटाने के प्रयत्न किये। फिर दिल्ली में 23 नवंबर 1919 को 'अखिल भारतीय

खलीफत कांफ्रेंस' आयोजित हुई। इसमें भी गाँधी जी ने अध्यक्षता भी की थी। पुनः 19 मार्च 1920 को 'खलीफत दिवस' मनाया गया और जून 1920 में सर्वदलीय सभा आयोजित हुई। उसी में 'असहयोग आंदोलन' तीव्र करने की रूपरेखा बनी, जिस में ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई उपाधियाँ लौटाने; सरकारी नौकरियों का बहिष्कार करने; सरकार को टैक्स न देने के प्रसिद्ध आह्वान किए गए थे।

'असहयोग आंदोलन' संबंधी ये आवाहन स्कूल-कॉलेज के हमारे इतिहास पाठों में खूब पढ़े-पढ़ाए जाते हैं, मगर असली बात छिपाकर कि यह सब 'खलीफत' के लिए किया गया था, न कि स्वतंत्रता के लिए। डॉ. भीमराव अंबेदकर ने अपनी पुस्तक *'थॉट्स ऑन पाकिस्तान'* (1940) में लिखा कि *"सचाई यह है कि 'असहयोग आंदोलन' का उदगम 'खलीफत आंदोलन' से हुआ था, न कि स्वराज्य के लिए कांग्रेसी आंदोलन से। खलीफतवादियों ने तुर्की की सहायता के लिए इसे शुरू किया था और कांग्रेस ने उसे खलीफतवादियों की सहायता के लिए अपनाया था। उसका मूल उद्देश्य 'स्वराज' नहीं, बल्कि 'खलीफत' था और स्वराज्य का गौण उद्देश्य बना कर उस से [बाद में] जोड़ दिया गया था, ताकि हिन्दू भी उस में भाग लें।"* (डॉ. अंबेदकर, 'संपूर्ण वाङमय', खंड 15, जनवरी 2000, पृ. 138)

एनी बेसेंट ने लिखा, *"यह स्मरण होगा कि महात्मा गाँधी ने मार्च 1920 में खलीफत की रक्षा में असहयोग को अन्य सवालों से अलग रखा था; किन्तु देखा गया कि खलीफत हिन्दुओं के लिए उतना लुभावना नहीं था।"* इसीलिए 30-31 मई को बनारस में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक में पंजाब में अत्याचार

(जलियाँवाला) और कुछ और बातों को जोड़ दिया गया। कांग्रेस नेता और विद्वान कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने तो लिखा है कि *''आम ग्रामीण हिन्दू जनता में खलीफत को 'अंग्रेजों के खिलाफ' आंदोलन मात्र समझने दिया गया, और कांग्रेस कार्यकर्ता जानबूझ कर तुर्की के खलीफा वाली बात छिपाते थे।''*

इस प्रकार, 'इस्लाम खतरे में' का नारा देकर भारत के मुसलमानों में खलीफत के लिए भारी जोश और जुनून भरा गया। इस गतिविधि में सन् 1919 से 1922 ई. के बीच गाँधीजी और कांग्रेस की प्रत्यक्ष भागीदारी थी, लेकिन अंततः जब खलीफत खत्म हो गई तो यहाँ मुसलमानों ने अपना सारा क्षोभ और रोष हिन्दुओं पर उतारा। केवल केरल के मालाबार में नहीं, बल्कि पूरे भारत में, जहाँ भी उन की ताकत थी। इतिहासकार स्टैनले वोलपार्ट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'जिन्ना ऑफ पाकिस्तान'* (1984) में लिखा है कि खलीफत के खात्मे का गुस्सा संपूर्ण भारत में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर निकाला। सामूहिक हत्याएं, बलात्कार, जबरन धर्मांतरण, वीभत्स अंग-भंग, और ऐसे-ऐसे क्रूर अत्याचार किए जिन्हें लिखना दूभर है। कांग्रेस अध्यक्ष रहे महान विधिवेत्ता सर सी. शंकरन नायर ने अपनी पुस्तक *'खलीफत क्वेश्चनः गाँधी एंड एनार्की'* (1922) में लिखा, *''मालाबार में (मोपला मुसलमानों ने) स्त्रियों पर जो क्रूरता की उस जैसा मेरी स्मृति में इतिहास में कोई उदाहरण नहीं है। वे इतने भयावह हैं कि लिखने योग्य नहीं।''*

मगर खलीफत आंदोलन के इस्लामी साम्राज्यवादी उद्देश्य को समर्थन देकर आखिर गाँधीजी ने क्या पाया? उनके अपने शब्दों में सुनिए। महादेव भाई के सामने 18 सितंबर 1924 को गाँधी कहते हैं, *''मेरी भूल? हाँ, मुझे दोषी कहा जा सकता है कि मैंने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया। मैंने उनसे कहा था कि वे इस्लामी पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए अपनी संपत्ति व जीवन मुसलमानों के हाथ में सौंप दें। और*

*इस के बदले मुझे क्या मिला? कितने मंदिर अपवित्र किए गए? कितनी बहनें मेरे पास अपना दुःख लेकर आईं? जैसा मैं कल हकीमजी [ अजमल खाँ] को कह रहा था, हिन्दू स्त्रियाँ मुसलमान गुंडों से मर्मांतक रूप से भयभीत हैं। मुझे ... का एक पत्र मिला है, मैं कैसे बताऊँ कि उसके छोटे बच्चों के साथ क्या दुराचार किया गया? अब मैं हिन्दुओं को कैसे कह सकता हूँ कि वह हर चीज को धैर्यपूर्वक स्वीकार करें? मैंने उन्हें भरोसा दिलाया था कि मुसलमानों के प्रति मैत्री का सुफल प्राप्त होगा। मैंने उन्हें कहा था कि वे बिना परिणामों की इच्छा के मुसलमानों को मित्र बनाने का प्रयास करें। उस भरोसे को पूरा करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। और फिर भी मैं आज भी हिन्दुओं से यही कहूँगा कि मारने की अपेक्षा मर जाएं।''* ('यंग इंडिया', 23 अक्तूबर 1924)

इस भयावह अनुभव के बाद भी गाँधी इस्लामी आक्रामकता के सामने हिन्दुओं के ससम्मान जीने का मार्ग नहीं खोज पाए। वस्तुतः उस दारुण 'भूल-स्वीकार' के बाद उन्हें राजनीति छोड़ देनी चाहिए थी। वह नैतिक व देश-हितकारी होता। उन तमाम हिन्दू हत्याओं, बलात्कारों के जिम्मेदार गाँधी भी थे, क्योंकि खलीफत-समर्थन में अकेले उन्होंने ही जिद कर के कांग्रेस को झोंका था। उसके भयावह परिणामों के बाद उन्हें देशवासियों के साथ अपने नौसिखिए प्रयोग फिर करने का कोई अधिकार न था, लेकिन गाँधी आगे भी चौबीस वर्ष तक, आजीवन उसी तुष्टीकरण पर चलते रहे। भारत के लिए, विशेषकर हिन्दुओं के लिए वैसे ही फिर कुफल लाते रहे! मुस्लिम लीग का 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत', 'डायरेक्ट एक्शन', देश-विभाजन और लाखों-लाख हिन्दुओं का संहार एवं शरणार्थियों में बदल जाना। यह सब उस गाँधीवादी, दिगभ्रमित राजनीति की भी देन थी, जो खलीफत आंदोलन के सक्रिय समर्थन से शुरू हुई थी।

दुर्भाग्यवश कांग्रेस ने अपने 'डिक्टेटर' नेता को उस भयंकर भूल का कोई सांकेतिक दंड भी नहीं दिया। न नेता ने कोई प्रायश्चित किया, न अपने में कोई सुधार।

फलतः जो अवसरवादी – और इस्लामी मामलों में, मतिहीन – राजनीति गाँधीजी ने खलीफत से शुरू की, वही आगे भी चलती रही। बल्कि एक घातक परंपरा बन गई। यह परंपरा, कि मुसलमानों की किसी भी माँग का विरोध नहीं होगा, उन्हें उत्तरदायी या सेक्यूलर बनाने का प्रयत्न नहीं होगा, उन्हें संतुष्ट करने के लिए हिन्दू और राष्ट्रीय हितों की बलि दी जाती रहेगी।

## भाग 4



# खलीफत आंदोलन की परिणती थी देश विभाजन

खलीफत-समर्थन से शुरू हुई अवसरवादी राजनीति की ही परिणति 1947 ई. का देश-विभाजन था। इस की सैद्धांतिक स्वीकृति गाँधीजी ने कम से कम दस-ग्यारह वर्ष पहले ही दे दी थी। यह कह कर कि *"यदि 8 करोड़ मुसलमान न चाहें तो उन्हें साथ बनाए रखने का कोई अहिंसक तरीका मैं नहीं जानता"* और, किसी *"घर में एक भाई को अपना हिस्सा अलग माँगने का अधिकार है"*, आदि। ऐसे बयानों का क्या अर्थ निकलना था?

वस्तुतः गाँधीजी द्वारा खलीफत का समर्थन करना यहाँ वोट-बैंक की अवसरवादी राजनीति का भी पहला उदाहरण था। वरना गाँधी को तुर्क-ऑटोमन साम्राज्य से कोई लेना-देना न था। फिर, उसी समय अंग्रेज यहाँ मौंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार (1919) लाये थे, जिस का गाँधीजी और कांग्रेस ने स्वागत किया था। इसीलिए जब गाँधी ने कांग्रेस को खलीफत जिहाद से जोड़ना चाहा तो शायद ही कोई उन के साथ था। क. मा. मुंशी के अनुसार सभी मानते थे कि गाँधी एक गलत उद्देश्य के लिए अनैतिक काम कर रहे हैं *"जिस से बड़े पैमाने पर हिंसा होगी और सुशिक्षित हिन्दू-मुस्लिमों की राजनीतिक भागीदारी घटेगी।"*

फिर, खलीफत को मदद देने से संगठित मुस्लिम ताकत बढ़ने का डर था, जिस से वे बाहरी मुस्लिमों से मिलकर यहाँ कब्जा कर सकते हैं। यह डर खुली चर्चा में था, जिस पर एनी बेसेंट, लाला लाजपत राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्रीअरविन्द आदि अनेक मनीषियों ने सार्वजनिक चिंता प्रकट की थी। आखिर, मौलाना आजाद सुभानी जैसे मुस्लिम अंग्रेजों से भी बड़ा दुश्मन 'बाईस करोड़ हिन्दुओं' को मानते थे! वे खुले तौर पर भारत में फिर मुस्लिम-राज चाहते थे। यह सब जानते हुए गाँधी के दबाव में कांग्रेस खलीफत जिहाद में लग गई। लेकिन एक बार 'जिहाद और काफिरों को मारने' का आवाहन कर देने पर जिहादियों के लिए ईसाई और हिन्दू, दोनों एक जैसे दुश्मन थे।

स्मरण रहे, *'असत्य और हिंसा एक दूसरे के बिना टिक नहीं सकते'* (सोल्झेनित्सिन)। गाँधी को भी असत्य में जुड़ने के बाद हिंसा का समर्थन करने पर विवश होना पड़ा। जब यहाँ मुसलमान उग्र होने लगे, तब उन के नेताओं ने सचमुच अफगानों को भारत पर हमला करने का निमंत्रण दे दिया। (डॉ. अंबेदकर, 'संपूर्ण वाङमय', खंड 15, पृ. 145)। गाँधी इस के भी समर्थन पर आमादा हो गए! उन के अपने शब्दों में, *"यदि अफगानिस्तान का अमीर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध युद्ध करता है, तो एक तरह से मैं उस की निश्चित रूप से सहायता करूँगा।"* (यंग इंडिया, 4 मई 1921)।

अर्थात, यदि अफगानिस्तान का शासक भारत पर कब्जे के लिए हमला करता तो गाँधी इसके भी समर्थन को तैयार थे, क्योंकि यहाँ कुछ मुसलमान यही चाहते थे! इस प्रवृत्ति पर डॉ. अंबेदकर ने आश्चर्य किया था कि जिस हिन्दू जनता ने गाँधी को महात्मा बनाया, उस के हितों को वह एक-दो मुस्लिम नेताओं की इच्छा पर भी बलिदान करने को तैयार रहते थे। ऐसे कामों की सूची देते हुए डॉ. अंबेदकर लिखते हैं, *"श्री गाँधी ने सिर्फ यही बातें नहीं की। जब मुस्लिमों ने हिन्दुओं के विरुद्ध घोर*

*अपराध किए, तब भी उन्होंने मुसलमानों से उस के कारण नहीं पूछे।''* (डॉ. अंबेदकर, 'संपूर्ण वाङ्मय', खंड 15, पृ. 147) डॉ. अंबेदकर ने धर्मांध मुसलमानों द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल, नाथूराम शर्मा, आदि अनेक प्रमुख हिन्दुओं की हत्या का उल्लेख किया। इन हत्याओं का कई मुसलमानों ने स्वागत किया, हत्यारों को '*गाजी*' कहकर अभिनन्दन किया। लेकिन *''इन हत्याओं पर श्रीगाँधी ने कभी विरोध प्रकट नहीं किया''* तथा *''श्री गाँधी ने कभी मुसलमानों से यह न कहा कि वे इन हत्याओं की निंदा करें।''* (वही, पृ. 148)

उलटे गाँधीजी ने उन हत्याओं को उचित ठहराने की कोशिश की! मालाबार (केरल) में अगस्त 1920 में मोपला मुसलमानों द्वारा हिन्दुओ पर जो 'हृदयविदारक अत्याचार' किए गए वे, डॉ. अंबेदकर के शब्दों में, *''अवर्णनीय हैं। समग्र दक्षिण भारत में हरेक विचार के हिन्दुओं में इन से भय की एक भयानक लहर दौड़ गई।''* किन्तु गाँधीजी ने निंदा तो दूर, बल्कि अप्रत्यक्ष प्रशंसा की। *''मोपलाओं के बारे में उन्होंने (गाँधी ने) कहा कि मोपला भगवान से डरने वाले बहादुर लोग हैं और उस बात के लिए लड़ रहे हैं, जिसे धर्म समझते हैं; और उस तरीके से लड़ रहे हैं जिसे धार्मिक समझते हैं।''* (वही, पृ. 149)।

अर्थात हिन्दुओं की बच्चों-स्त्रियों समेत वीभत्स हत्याएं, बलात्कार, जबरन धर्मांतरण, जबरन गोमांस खिलाना, आदि चूँकि 'धर्म' समझ कर किये गए, सो गाँधीजी को उस की निंदा तक से परहेज हुआ। यही नहीं, उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमिटी को भी मोपलाओं के अत्याचार पर कोई ऐसा प्रस्ताव लेने से रोका, ताकि *''मुसलमानों की भावनाओं को आघात न पहुँचे।''* अंततः प्रस्ताव ऐसा लिया गया जिस के अनुसार, मानो मोपलाओं को उत्तेजित किया गया, विवश किया गया, और उन की गलतियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया, आदि। (वही, पृ. 149-50)।

कांग्रेस प्रस्ताव में यह सब लिखना कितना बड़ा झूठ था, यह मोपलाओं द्वारा संहार-अत्याचार वाले उस दौर के अखबार उलट कर भी देख सकते हैं। केरल के गणमान्य हिन्दुओं ने ब्रिटिश महारानी को पत्र लिखकर रक्षा करने की विनती की थी। वह पूरा लोमहर्षक प्रकरण कई देशी-विदेशी महानुभावों द्वारा लिखे इतिहास में दर्ज है। उसे गाँधीजी ने उसी समय झुठलाने और पर्दा डालने की कोशिश की और कांग्रेस को भी इस के लिए मजबूर किया। वह कोई अपवाद न था। खलीफत के पूरे काल में, मुस्लिम हिंसा का समर्थन करने में गाँधीजी ने कोई संकोच नहीं किया।

स्वामी श्रद्धानंद ने एक खलीफत सभा का विवरण दिया है, जिस में वे गाँधीजी के साथ गए थे। उस में मौलाना लोग बार-बार हिंसा का आवाहन कर रहे थे। स्वामी श्रद्धानंद के शब्दों में, *"एक रात हम दोनों नागपुर की खलीफत कांफ्रेंस में गए। उस मौके पर मौलानाओं ने कुरान की आयतें पढ़ीं, जिन में बार-बार जिहाद और काफिरों को मारने का आदेश था। परंतु जब मैंने खलीफत आंदोलन के इस पहलू की ओर ध्यान दिलाया, तो महात्मा जी मुस्कुराए और कहने लगे कि वे ब्रिटिश नौकरशाही की ओर इंगित कर रहे हैं। उत्तर में मैंने कहा कि यह सब तो अहिंसा के विचार का विनाश करने जैसा है, और जब मुस्लिम मौलानाओं के मन में उलटी भावनाएं आ गई हैं, तो उन्हें इन आयतों का इस्तेमाल हिन्दुओं के विरुद्ध करने से कोई रोक नहीं सकेगा।"* (वही, पृ. 151)

वही हुआ। पर नोट करें, कि गाँधीजी मुसलमानों द्वारा हिंसा के आवाहनों को मुस्कुराकर स्वीकृति दे रहे थे! पूरे खलीफत दौर की व्यवस्थित परख करने पर चकित रह जाना पड़ता है कि गाँधीजी के अहिंसा संबंधी दोहरेपन तथा खलीफत-असहयोग आंदोलन की कितने बड़े पैमाने पर लीपा-पोती की गई है। भारतीय राजनीति में गाँधी के आरंभिक कदमों से ही साफ दिखता है कि उन की समझ, अनुमान, और तरीके

कितने कच्चे थे। पर लगातार बड़ी-बड़ी भूलों के बावजूद यहाँ गाँधीजी की महानता का प्रचार बढ़ता गया। इस के लिए बड़ी-बड़ी असुविधाजनक सचाइयों को पूरी तरह दबा दिया गया।

समकालीन मनीषियों, नेताओं, आदि ने गाँधी की जो आलोचनाएं की थी, वह सब लुप्त-सी कर दी गई हैं। इस में मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भी बड़ी भूमिका निभाई। मध्यकालीन मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओं पर जुल्मों को छिपाने की कड़ी के रूप में उन्होंने वर्त्तमान युग में भी हिन्दुओं पर होते जुल्म की लीपा-पोती की। खलीफत-जिहाद का सारा कच्चा चिट्ठा गायब कर उसे *'खिलाफत आंदोलन'* या *'मोपला विद्रोह'* जैसे गौरवशाली नाम दे देना, और गाँधी-नेहरू की महानता का अहर्निश गुणगान उसी क्रम में है। भारत के महान ज्ञानियों, संतों, मनीषियों ने जो कुछ भी शिक्षाएं दी थीं, वह सब गाँधीजी के हाथ में कांग्रेस नेतृत्व आने के बाद से भुलायी, झुठलाई जाने लगी। वह परंपरा आज भी चल रही है। तमाम हिन्दू-विरोधी तत्व खलीफत आंदोलन की शताब्दी मनाने के बदले उसे तहखाने में डाल रहे है। संघ-भाजपा द्वारा भी वही रुख लेना उन का अज्ञान है, या गाँधीजी के ही नक्शे-कदम वाली 'रणनीति'? ऐसी रणनीति जिस का शिकार सदैव हिन्दू हुए हैं।